ज़िन्दगी का सिस्टम

लेखक : आयतुल्लाहिल उज़मा सय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी
सम्पादन : नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

क़िस्त : 13

दूसरी चीज़ जो उसकी आंखों के सामने है वह ख़ुदा की पैदा की हुई एक नेमत 'पानी' है। वह देखता है कि इस पानी का इन्सान की ज़िन्दगी के सिस्टम में कितना लेना देना है, और कितने फ़ायदे इससे जुड़े हैं। ख़ुदा ने इस पानी को ज़्यादा बहुतात से पैदा किया है और इन्सान को सुख पहुँचाने के लिए इसको पाक और पाक करने वाला बनाया है । इसकी वह ख़ासियत है जो इस्लामी शरीयत में किसी दूसरी चीज़ के लिए नहीं मिलती। इसकी वजह से इन्सान को बहुत आसानी पैदा होती है। अब इन्सान दोनों मिली–जुली हालतों के साथ एक तरफ़ उस काम का एहसास जिसे वह करता है जिसमें ख़ुदा की मदद की ज़रूरत है, और दूसरी तरफ़ उस नेमत यानि पानी के ध्यान से जो उसके सामने है और जो उसके फ़ायदे और बरकतें मौजूद हैं, वह कहता है – 'बिस्मिल्लाहि व बिल्लाहि अल्हम्दु लिल्लाहिल्लज़ी ज'अललमा–अ तहूरा वलम यज्–अल्हु नजिसा' (ख़ुदा की मदद से और ख़ुदा के सहारे से इबादत भक्ति में आगे बढ़ता हूँ सिर्फ़ उसकी तौफ़ीक़ के भरोसे पर । फिर कहता है कि हम्द संस्तुति (तमाम तारीफ़ें) हैं ख़ुदा के लिए जिसने 'पानी को पाक और पाक करने वाला पैदा किया और इसको नजिस नहीं बनाया।''

(2) वज़ू में कुल्ली करना मुस्तहब (अच्छा) है, अब कुल्ली में होता क्या है? पानी मुँह के अन्दर हिलता है। अब इन्सान का दिमाग़ उस ओर जाता है कि मेरे मुँह से किन चीज़ों का लगाव है, मुँह से जिस चीज़ का सबसे ज़्यादा लगाव है वह बोलना (बात करना) है, मगर दुनिया में इन्सान कितना ही बोलने की सकत रखने वाला और ज़बान वाला हो, क्या फ़ायदा है? अगर ये ज़बान ईश्वर के आगे जवाब न दे सके और सवाल के मौक़े पर गूँगी हो जाए। क़ुर्आने मजीद में क़यामत (प्रलय) के दिन के बारे में बताया गया है कि – ''कोई उस दिन बात न कर सकेगा, मगर ख़ुदा की इजाज़त से'' और दूसरी जगह साफ़ कहा गया है ''बेकहे, (Dis-obedient) लोगों को कोई इजाज़त न होगी कि वह बहाना (Excuse) कर सकें।

ज़बान उस दिन चुप है, इसलिए कोई हुज्जत (प्रमाण) ही पास में नहीं है। मगर उस दिन ज़बान का खुला होना दुनिया में इस ज़बान के सही तरीक़े से चलने से जुड़ा है क्योंकि वहां की जज़ा (इनाम) और सज़ा यहाँ के कर्म (अच्छे और बुरे काम) के हिसाब से है। ये ज़बान दुनिया में ज़िक्रे–इलाही (ख़ुदा की याद में) लगी रहे, ख़ुदा की याद से न झपके, सच बातों के कहने में कमी न करे। फिर ये इन्सान के लिए एक सफल ज़बान है। इसलिए बन्दा ख़ुदा से इन बातों का सवाल करता है और कहता है –''ऐ ख़ुदा ! मुझे हुज्जत प्रदान कर यानि मुझे अपने सामने जवाब देने' की सकत दे, जिस दिन मैं तेरे सामने हाज़िर हुँ और मेरी ज़बान को चालू रख अपने ज़िक्र अपनी याद के साथ।

(2) फिर नाक में पानी डालने का हुक्म है, उस वक़्त सूँघने की तरफ़ ध्यान होता है। यहाँ दुनिया में हज़ारों तरह के फूलों की ख़ुशबू का आनन्द होता है, और अच्छी क़िस्म के इत्र और

सेन्ट (Scent) को सूँघ कर इन्सान को खुशी महसूस होती है। लेकिन क़यामत के दिन अगर जन्नत की खुशबू सूँघने से ये नाक रोक दी गयी तो यहाँ के सारे मज़े बेकार हैं। क्योंकि बहुत से गुनाहों के लिए हदीसों में ये बयान है कि जो इन्हें करेगा, वह जन्नत की खुशबू तक ना सूँघ सकेगा। ये जन्नत से वन्चित होने की आख़िरी हद है, इसीलिए भगवान से ये अर्ज़ किया जाता है –''ऐ अल्लाह ! मेरे ऊपर जन्नत की ख़ुशबू को हराम (निषेध) न करना और मुझे उन लोगों में ठहराना जो इसकी ख़ुशबू और मज़े को उठाने वाले होगें।''

इसका पहला हिस्सा आख़िरत (परलोक) से जुड़ा है और दूसरा हिस्सा यानि ''मुझे उन लोगों में न ठहराना जिनके साथ ये बर्ताव होगा'', इसका सम्बन्ध दुनिया से है यानि अपने कर्म से मैं उन लोगों में न गिना जाऊँ जो अपने कुकर्मों के कारण से जन्नत की खुशबू से दूर होगें।

इसके बाद चेहरे पर पानी डालेगा। ये वज़ू का पहला वाजिब (अनिवार्य) हिस्सा है। उस वक़्त चेहरे की धूल वग़ैरह दूर होती है और चेहरा साफ़ होता है। मगर उस समय याद आना चाहिए कि क़यामत के दिन दो तरह के लोग होंगे : ''कुछ वह होंगे जिनके चेहरे साफ़ उजले और नूरानी हैं, ''और कुछ चेहरों पर हवाईयाँ उड़ रही होंगी और कालिख दौड़ी हुई होगी ।

एक जगह कहा गया है – ''जिन लोगों के चहरे उजले नूरानी होंगे (क़यामत के दिन) वे खुदा की दया /रहमत में होंगे।''

इस भेद को देखते हुए चेहरा धोते वक़्त दुआ की जाती है – ''ऐ खुदा ! मेरे चेहरे को उस दिन उजला रखना जिस दिन बहुत से चेहरे काले होंगे और मेरे चेहरे को उस दिन काला न करना जब बहुत से चेहरे उजले होंगे।''

5. फिर दाहिने हाथ को धोना है। इस जगह क्रम/तरतीब यानि पहले दाहिना फिर बायां हाथ) ज़रूरी है इसलिए दाहिने की ख़ास बात ज़रूर सामने आएगी और ये फ़र्क़ कि क़यामत के दिन कुछ लोगों को दाहिने हाथ में ना–म–ए–आमाल (कर्म पत्र) दिया जाएगा, ये अच्छे कर्म वाले लोग होंगे और कुछ को बाएँ हाथ में, ये बुरे कर्म वाले लोग होंगे।

इसलिए ये दुआ करेगा– ''ऐ ख़ुदा ! मेरा आमाल–नामा मेरे दाहिने हाथ में न प्रदान करना और जन्नत की सदा रहने वाली ज़िन्दगी पाने को मेरे लिए आसान कर देना और मुझसे बहुत कम हिसाब करना।''

6. फिर बाएँ हाथ को धोते वक़्त ये दुआ –''ऐ ख़ुदा ! मेरे आमाल नामे को मेरे बाएँ हाथ में न प्रदान करना और इन हाथों को मेरी गर्दन की तरफ़ बंधा हुआ न रखना और मैं तुझसे पनाह माँगता हूँ, आग की हथकड़ियों से।''

हाथों का गर्दन की तरफ़ बंधा होना कर्म में कमी का एक इशारा है,

7. फिर सर का मसह (गीला हाथ फेरना) है, उस वक़्त ये दुआ पढ़ें –''ऐ ख़ुदा ! मुझे उढ़ा दे अपनी रहमत और बरकत बढ़ोत्तरी और माफ़ी ।''

8. फिर पैरों का मसह। उस वक़्त ये दुआ पढ़े।

''इन्सान जब इस दुनिया में कर्म और कर्तव्य के रास्ते पर सही तरीक़े से चलेगा तो ऐसे में 'सिरात' यानि जन्नत में जाने का रास्ता आसानी से पार कर लेगा। ये इन्सान के फ़र्ज़/कर्त्तव्य की नज़ाकत (सूक्ष्मता/Fineness) ही है जिसके लेहाज़ से कहा गया है कि सिरात बाल से ज़्यादा महीन और तलवार से ज़्यादा तेज़ है। उस वक़्त उस पर अडिग रहना खुदा की तौफ़ीक़ (मदद) और इन्सान के जतन के साथ जुड़ा हुआ है।

पांचवां अध्याय

नमाज़

यह इस्लाम का वह फ़रीज़ा (फ़र्ज़/कर्त्तव्य) है जिसे धर्म का स्तम्भ (Pillar) यानि मज़हब का खम्भा कहा गया है। अगर ग़ौर करें तो दुनिया

के सारे मज़हब में आपको इबादत/भक्ति का कोई न कोई तरीक़ा मिलेगा। मगर हर इबादत के तरीक़े में कोई 'एक' ख़ास हैसियत (Position) होती है। कहीं मुनाजात व दुआ़ है और कहीं कुछ ख़ास तरह के काम हैं, और हिलना, डुलना, उठना बैठना कहीं सिर्फ़ ठहराव (ध्यान–मग्न) और सोच को इबादत कहा गया है। मगर इबादत का कोई तरीक़ा इतना सर्वांगीण (Comprehensive), सर्वत्र और पूरा (Perfect) नहीं है जितना इस्लाम की इबादत का तरीक़ा नमाज़ है।

इसमें आत्मा भी साथ है और जिस्म भी, ज़बान से भी याद है और कर्म से भी। बोल से ख़ुदा की तारीफ़ भी और तस्बीह भी, मुनाजात भी है और दुआ भी, और अ़मल में झुकने और मानहीनता दिखाने के जितने भी दर्जे होते हैं , वे सब मौजूद हैं। अदब के साथ खड़े होना और फिर आधे धड़ से झुकना और आख़िर में माथे का धरती पर रख देना। एक ज़िन्दा मज़हब के लिए इस तरह का तरीक़ा होना ज़रूरी है जो ख़ुदा की उपासना का एहसास, भक्तिभाव पैदा करता रहे।

यूँ तो हर कोई जिस मां–बाप के घर में पैदा हुआ है, उन्हीं के मज़हब को अपना मज़हब कहता है, मगर ये उसी हद तक है कि जब कोई पूछे कि तुम्हारा मज़हब क्या है तो वह सिर्फ़ कह दे कि मेरा मज़हब ये है, मगर उसका ध्यान और ख़्याल रहना ज़रूरी नहीं।

अब ज़ाहिर है कि विश्वास का असर इन्सान पर उतना ही ज़्यादा पड़ सकता है, जितना ज़्यादा वह इन्सान के सामने रहे।

मज़हब की अस्ल सिद्धान्त अध्यात्मिकता/रूहानियत की जड़ ख़ुदा का विश्वास होना है। इन्सान अपने ख़ुदा को याद रखेगा तो उसे एहसास पैदा होगा कि मुझमें कौन सी बातें होना चाहिए, कौन सा काम करूँ जिससे ख़ुदा ख़ुश हो और कौन सा काम न करूँ ताकि ख़ुदा नाराज़ न हो। दूसरी चीज़ 'आख़िरत (परलोक) की याद' है, इसका भी असर इन्सान के कामों और कर्म पर पड़ता है।

वह इन्सान अपने कर्त्तव्य की अनदेखी कर देता है जो दुनिया के सुख चैन में पड़ कर आख़िरत का ख़्याल दिल में नहीं लाता। मगर ख़ुदा के वह बन्दे जिनके मन में सदा ये बात रहती है कि हमको यहां के बाद एक दूसरी दुनियां देखना है, जहाँ कर्म का हिसाब होगा, और अच्छे और बुरे कामों का बदला दिया जाएगा, वह कभी अपनी चाहतों और लालच के बहाव में आगे नहीं बढ़ते। मानने, विश्वास, सोच मन के लेहाज़ से ये दोनों विश्वास इन्सान के सुधार के लिए काफ़ी हैं।, यानि इन दोनों विश्वासों के बाद हर कोई को यह ख़याल पैदा हो सकता है कि मुझे ऐसे काम करने चाहिए जिनसे ख़ुदा ख़ुश हो और आख़िरत में मुझे सज़ा न मिले।

मगर काम के करने के लेहाज़ से जब तक कोई बताने वाला न हो कि वह कौन से रास्ते हैं जिनसे ख़ुदा राज़ी होगा और जिनसे आख़िरत में सफ़लता मिल सकती है, उस वक़्त तक इन दोनों विश्वासों का फ़ायदा बन नहीं सकता।

वह रसूल (स0) होता है जो ख़ुदा और बन्दे के बीच लगाव और सम्पर्क बनाता है। रसूल (स0) की शिक्षाएं उनके काल के लोगों को तो सीधे मिलती थी। अगर आप (स0) के बाद आप की याद दिलों में बाक़ी न रहे तो आपके होने की बरकतें बाद की पीढ़ियों तक नहीं पहुँच सकतीं।

इसलिए ज़रूरत है कि आप (स0) की भी याद बाक़ी रहे ताकि आप (स0) की शिक्षाएं और आप (स0) के चरित्र से बाद की पीढ़ियां उसी तरह फ़ायदा उठाएँ जिस तरह आप के समय के लोग आप (स0) से फ़ायदा उठाते थे।

ये तीनों चीज़ें ऐसी हैं जिनमें इस्लामी नज़रिए से किसी अलगाव की कोई जगह नहीं है। यानि सभी फ़िरक़ो गुटों में इस पर एका हैं कि ये इस्लाम के मूल विश्वास हैं। इस्लाम का सबसे

अहम फ़र्ज, 'नमाज़', इन तीनों चीज़ों की याद बाक़ी रखने का ज़रिया है। सिरजनहार की याद, आख़िरत/परलोक की याद और रसूल (स0) की याद सब इसी कारण मुसलमानों के दिलों में ताज़ा होती रहती है।

हमारे नज़दीक रसूल (स0) ने अपने बाद के लिए भी कुछ लोग छोड़े थे। जिनके चाल चलन और कर्म अल्लाह की शिक्षाओं के आइने थे। उनकी याद बाक़ी रखने में रसूल (स0) ने बड़ा एहतेमाम किया था। वह रसूल(स0) के अहलेबैत (अ0) थे, हमारे नज़दीक नमाज़ में उनकी याद भी बाक़ी रखी गई है। और वह तशहहुद के बाद सलवात है, जिसमें उनका ब्यान होता है। और हम नहीं बल्कि इमाम शाफ़ई भी इसको नमाज़ का हिस्सा समझते हैं और अहलेबैत (अ0) के ज़िर्क के बिना नमाज़ को ग़लत ठहराते हैं।

उनका ये शेर मशहूर हैः– " आपके लिए ऐ रसूल (स0) के अहलेबैत (अ0) ये फ़ज़ीलत श्रेष्ठता बहुत काफ़ी है कि जो आप पर सलवात न भेजे उसकी नमाज़ स्वीकार होने के क़ाबिल नहीं।"

याद रखिए कि रसूल (स0) के अहलेबैत (अ0) की याद बाक़ी रखने से खुद उनका कोई फ़ायदा नहीं है, उन्हें तो अपनी ज़ाहिरी ज़िन्दगी से खुद को कब फ़ायदा पहुँचा, बल्कि उन्हें तो पत्थर खाने पड़े, कूड़ा फेंके जाने का अपमान सहना पड़ा और वह दुःख उठाना पड़े कि खुद फ़रमाया–"किसी नबी (खुदा के संदेशक) को वह दुःख नहीं पहुँचाए गए, जो मुझको पहुँचाए गये।"

उनकी वह सेवाएं और शिक्षाएं जो ज़िन्दगी भर उन्होंने दीं उससे ख़ुदा के बन्दों/दासों को फ़ायदा पहुँचा और इसी तरह उनकी याद बाक़ी रहने से भी ख़ुदा के बन्दों ही को फ़ायदा पहुँच सकता है।

यह इस्लाम का हुक्म नमाज़ ही है जो उनकी याद बाक़ी रखने का माध्यम है और एक बार नहीं बल्कि कम से कम दिन में पाँच बार, इसे कोई मामूली बात न समझिए।

किसी फ़ारसी कवि ने कहा है कि "लगातार बारिश की बूंदें जब पत्थर पर गिरती हैं तो उस पर भी निशान बन जाता है। बारिश के बूंद की हस्ती को देखिए और पत्थर के ऐसे कठोर पिण्ड जिस्म को, मगर लगातार बराबर चोट से वह पत्थर पर अपना असर पैदा कर देती है। फ़िर उनकी लगातार याद जो नमाज़ के ज़रिए होती है, क्या वह ख़ाली जा सकती है?

पत्थर जैसा सख़्त दिल भी हो तो भी हो सकता है कि कभी न कभी ज़रूर उस पर असर हो जाए।

नमाज़ के इन मक़सद को मासूम इमामों (अ0) ने हदीसों में ज़ाहिर किया है।

मुहम्मद बिन सनान का पत्र है, इमाम रज़ा (अ0) की सेवा में कुछ मसले पूछे हैं, जिनमें नमाज़ की मसलहत या दर्शन का भी सवाल है।

हज़रत (अ0) ने जवाब में लिखाः–

" नमाज़ की मसलहत ये है कि इसमें ख़ुदा वन्दे आलम की ख़ुदाई का एक़रार है और ख़ुदा के अन्य (ख़ुदा के अलावा तमाम चीज़ों) से अलगाव ज़ाहिर किया गया है और परमेश्वर ख़ुदा के आगे (अपने को) बेबस, हीन, गिरा पड़ा (मानकर) खड़ा होना है, और अपने गुनाहों को मान कर और पिछले गुनाहों की माफ़ी की दरख़ास्त है और खुदा की महानता के आगे चेहरे का ज़मीन पर हर दिन रखना है।

ये है मेरे बयान का पहला हिस्सा जिसमें मैने साबित किया था कि भक्ति इबादत के जितने तरीक़े हैं वह किस तरह सर्वांगीणना के साथ नमाज़ में होते हैं।

इसके बाद इमाम (अ0) फ़रमाते हैं कि इस नमाज़ के ज़रिए से इन्सान को याद बाक़ी रहती है और वह भूलने नहीं पाता और न (अपने में) उड़ पाता है और वह सदा ख़ुदा के सामने सर झुकाए नीच और मग्न रहता है और उससे दीन

व दुनिया में, बढ़ोत्तरी मांगता है। नमाज़ के ज़रिए से रात–दिन हर वक़्त बन्दे को ख़ुदा की याद करना ज़रूरी हो जाता है ताकि बन्दा अपने मालिक और सिरजनहार को भूल न जाए और सरफिरा न हो जाए और सर न उठाए, और यह कि अपने ख़ुदा को याद करने और उसके सामने होने के एहसास से वह गुनाहों से दूर रहेगा और बहुत से नुक़सानों से बचा रहेगा।

इसमें नमाज़ को ख़ुदा की याद का ज़रिया बताया गया है, जो सारे विश्वासों का शीर्षक और अस्ल आधार है।

दूसरी रवायत हश्शाम बिन अलहकम की है कि मैंने इमाम जाफ़र सादिक़ (अ0) से नमाज़ का कारण पूछा, जब कि इससे लोगों की (दूसरी) ज़रूरतों का नुक़्सान होता है और शरीर को दुःख भी होता है। इमाम (अ0) ने फ़रमायाः

''नमाज़ में बहुत सी मसलहतें है।, अगर लोगों को बग़ैर चेतावनी और रसूल (स0) की याद के छोड़ दिया जाता तो (जानते हो) क्या होता ? ''

मुसलमान भी पहली उम्मतों (समुदायों) की तरह हो जाते जिन्होंने एक धर्म बना लिया और (नई) किताबें गढ़ डालीं और लोगों को अपने तरीक़ों का न्योता दिया और लोग उस पर चले। उसका नतीजा ये हुआ कि उन पिछले नबियों की शिक्षा मिट गयी और वह खुद उनके जीवन के साथ विदा हो गयी।

ख़ुदा ने यह चाहा कि मुसल्मानों को हज़रत मोहम्मद (स0) की शिक्षा भूलने न पाए इसलिए नमाज़ का फ़र्ज़/कर्त्तव्य लागू किया जिसमें रोज़ाना पाँच बार ये रसूल (स0) को याद कर लेते हैं और उनके नाम का ऊँची आवाज़ से एलान करते हैं, और उन पर नमाज़ और ख़ुदा के ज़िक्र का बन्धन इसलिए लगाया गया है कि वह ख़ुदा की ओर से लापरवाही न बरतें और उसे भूल न जाएं जिससे उसकी याद मिट जाए।''

इस हदीस में साफ़ तौर से नमाज़ को रसूल (स0) की शिक्षा और रसूल (स0) के ज़िक्र, ध्यान को बाक़ी रखने का भी ज़रिया बताया गया है।

बेशक ये ताज्जुब है कि इस नित याद दिलाने के साथ मुसलमान खुद नमाज़ के बारे में रसूल (स0) की शिक्षा को कैसे भूल गए जिसकी वजह से ये मतभेद पैदा हो गया कि नमाज़ का सही तरीक़ा क्या था, रसूल (स0) हाथ सीने पर रखते थे या सीने के नीचे या पेट के नीचे या हाथ खोल कर पढ़ते थे? मालूम होता है कि ख़ुदा ये चाहता था कि रसूल (स0)की याद एक तरह से बाक़ी रखी जाए मगर मुसलमानों में कुछ घुसपैठिये लोग ऐसेआ आगए थे जो जान बूझ कर रसूल (स0) की शिक्षा को धुधंला कर देना चाहते थे लेकिन उन लोगों ने इस सिलसिले में जितनी भी कोशिश की हो, फिर भी वह मुसलमानों से अस्ल नमाज़ को नहीं मिटा सके, और जब तक नमाज़ दुनिया में बाक़ी है, रसूल (स0) की याद भी उसके साथ बाक़ी है।

नमाज़ का वक़्त

नमाज़ धर्म के उसूल और मज़हब के आधार की याद बाक़ी रखने के लिए है, इसके लिए ऐसे वक़्त का चुनाव किया गया है जिस वक़्त दिमाग़ दुनिया की खींचतानी से कुछ हद तक अलग होता है।

ज़ाहिर है कि ऐसे समय जब शोर हड़बोंग हो रहा हो उस वक़्त अगर आप किसी से कोई बात कहिए तो शायद ही वह उसको याद रहे, लेकिन ऐसे समय जब एकाई हो, आप हों और वह हो तब कुछ कहिए तो उसके दिमाग़ में वह बात बैठ जाएगी और वह उसे ज़्यादातर नहीं भूलेगा।

अब देखिए एक तरफ़ सुबह की नमाज़ का वक़्त ये वह मौक़ा है जब दुनिया में सन्नाटा है, दुनिया वाले बेहोश सो रहे हैं और पूरी रात मौज व मस्ती में बिताने वाले भी निंदया से हैं उस वक़्त ख़ुदा का बन्दा मुसल्ले पर आकर अपने

ख़ुदा को याद करता है। दूसरी ओर इशा की नमाज़, इसमें सभी नमाज़ों के उसूल के ख़िलाफ़ इसमें जल्दी के बजाए देर करने को ज़्यादा अच्छा ठहराया गया है, मालूम होता है कि जितना सोने के वक़्त से पास हो उतना अच्छा है।

मतलब ये है कि दुनिया में शान्ति छा जाए, इन्सान चैन की नींद की ओर जाने से पहले अपने पैदा करने वाले को याद कर ले।

आज कल की मेडिकल रिसर्च भी यही बताती है कि सोने से पहले और सो के उठ कर जिस ध्यान को दिमाग़ में बनाया जाए वह दिमाग़ में गहराई से बैठ जाता है। इसलिए सुबह की नमाज़ और रात की नमाज़ (इशा) के लिए यही दो वक़्त चुने गए हैं। अब रह गयीं बीच के वक़्त की नमाज़ें इसके लिए दोपहर का वक़्त रखा गया है, जिस वक़्त दिन के हिस्सों में सबसे ज़्यादा ठहराव होता है, 'सूरज निकलने के बाद और डूबने से पहले' यानि सुबह और तीसरे पहर (शाम से पहले का वक़्त) के वक़्त दुनिया की चहल पहल और रौनक़ के बीच दोपहर का वक़्त एक हद तक सन्नाटे का होता है, उसमें ज़ोहर और अस्र की नमाज़ रखी गयी है।

सूरज डूबने का वक़्त, दिन और रात के बीच का वक़्त है, जब नेचर में एक ख़ास चैन और ठहराव होता है जबकि दरिया की धाराएं भी ठहरी हुई, हवा ठहरी ठहरी, चिड़िया भी चुप चुप होती है उस वक़्त एक नमाज़ रख दी गयी, ये इसी लिए है कि सिरजनहार की याद इन्सान के दिल–दिमाग़ पर असर कर सके और उसे अपने बन्दे/दास होने और भक्ति का तगड़ा एहसास पैदा हो।

फिर देखिए जिस तरह इन्सान के शरीर के लिए कसरतें होती है, कसरत को देखिए तो उसमें कोई 'एक' हिस्सा ख़ास असर और फ़ायदा का नहीं होता, मगर बार–बार एक काम के करने से जिस्म पर असर डालती है, वह चाहे मामूली सी हल्की कुश्ती या टहलना ही क्यों न हो। हर इन्सान जानता है कि ये शरीर की हेल्थ (Health) के लिए फ़ायदे वाला है और उसका असर जिस्म पर पड़ता है, मगर उसका 'एक'–'एक' क़दम वह तो कुछ भी नहीं है, एक क़दम की तो कोई हैसियत ही नहीं है मगर यही एक–एक क़दम जब मिल जाते हैं और पड़ते हैं तो कसरत (Exercise) का रूप अपना लेते हैं और उससे इन्सान के जिस्म की तरबियत (Physical Training) होती है।

इसी तरह रूह और चाल चलन क़ी तरबियत है, मुम्किन है कि आप एक बार किसी के लिए अपनी नींद को उचाट कर दें लेकिन उसका कोई असर नहीं होगा बल्कि हो सकता है कि आपके मन पर इसका ख़राब असर पड़े, लेकिन अगर आप बराबर दूसरों के लिए अपनी नींद को ख़राब करते हों और कोई शिकायत भी न करें तो आपके मन पर ईसार (परित्याग/दूसरों के लिए कुर्बानी) और दूसरों की सेवा की वह शक्ति पैदा हो जाएगी जो हर एक इन्सान में नहीं पायी जाती।

ख़ुदा की इबादत, (भक्ति) तक़वा (संयम) और परहेज़गारी और मज़हबी हैसियत से इन्सान के हर कमाल विकास का राज़, मन की चाहतों का मुक़ाबला करना है। इसी को मन का जेहाद (संग्राम) कहा गया है और इसी के लिए शायर ने कहा है–

"बड़े मूज़ी को मारा, नफ़्से अम्मारा को गर मारा"

(बड़े घातक को मारा अगर आशाओं वाले मन को मारा।)

ये नमाज़ सचमुच मन की चाहतों से मुक़ाबला करने की एक कसरत है। वह सुबह का सुहाना वक़्त, वह वक़्त जब सुबह की ठंडी हवा के झोंके थपक–थपक कर सुलाना चाहते हैं, जब नर्म बिस्तर और गर्म तकिया लेटे रहने का न्योता दे रहा है जिसमें अपने रंग वालों की टोली सो रहने को रिझा रही है, क्यों कि पूरी दुनिया वाले और मौज मस्ती वाले सब मीठी नींद ले रहें हैं। और याद रखिए कि जागने वालों में जागना कठिन नहीं होता, मगर सोते हुए जमघटे में जागना

बहुत कठिन है, उस समय ख़ुदा का बन्दा बिस्तर को छोड़कर खड़ा हो जाता है। अगर जाड़े का मौसम है तो ठण्डे पानी से वज़ू करता है और मेहराब (पूजा स्थली) में आकर अपने ख़ुदा की इबादत भक्ति में व्यस्त हो जाता है और ख़ुदा की याद में डूब जाता है। अगर इन्सान इसमें पूरे तौर पर जमा रहे तो क्या ये अपने फ़र्ज़ के पहचानने की कोई आम प्रकार है?

नमाज़ ख़त्म हुई, अब इन्सान को दुनिया के अपने कामों में लग जाना चाहिए, क्यों कि दिन बनाया गया है, रोज़ी–रोटी कमाने के लिए।

ख़ुदा खुद कह रहा है कि :–

"हमने रात और दिन को इसलिए बनाया है कि इसमें चैन और आराम पाओ और इससे फ़ायदा उठाओ।'' कुर्आन की तफ़सीर बयान करने वालों से पूछिए तो वह बतायेगें कि '' फ़ायदा उठाने'' का मतलब ''रोज़ी रोटी कमाना'' है।

वे लोग जो सुबह की नमाज़ के लिए उठने के आदी नहीं उनके दिन का बहुत सा हिस्सा भी सोने की भेंट होकर बेकार चला जाता है। मगर सुबह की नमाज़ की आदत दिन के किसी हिस्से को बेकार नहीं जाने देती। अब जाइए अपने रिज़्क की तलाश कीजिए, इसमें कोई हर्ज नहीं है। इस वक़्त को नाफ़ले की नमाज़ तक के लिये मकरूह बताया गया है।

दोपहर भर के काम के बाद मज़दूर भी थोड़ी देर की छुट्टी ले लेते हैं, दुकानदार दुकानों पर ही सही कुछ देर आराम के लिए लेट जाते है। अब बस नहीं दिल चाहता है कि खाना खाया है तो सो रहें, आराम कर लें, इस वक़्त ज़ोहर (ज़ुहर) की नमाज़ रख दी गयी, सोना है तो बाद में सो लेना लेकिन अगर एहसास हो कि हम अपने पैदा करने वाले के दास और भक्त हैं, तो ज़रा बारगाह में हाज़िर होकर चार रकअत नमाज़ पढ़ते जाओ, ये ज़ुहर की नमाज़ है, इसके बाद थोड़ी देर आराम कर लीजीए।' नाफ़िला के लेहाज़ से अस्र का वक़्त हटा कर रखा गया है और नाफ़िला का वक़्त इतना ज़्यादा रखा गया है कि उतनी देर में कुछ आराम भी किया जा सकता है और दिल चाहे तो नाफ़िला भी पढ़ी जा सकती है, फिर अब काम का वक़्त आ रहा है, बिक्री का वक़्त है, जल्दी है कि जाएं और सौदा बेचना शुरू कर दें। फ़र्ज़ (कर्त्तव्य) का एहसास कहता है कि नहीं अभी चार रकअत अस्र की नमाज़ और पढ़ें , फिर जाके अपने काम में लगें। लीजिए इसके बाद दिन ख़त्म हुआ और रात आ रही है। बाज़ार की चहल पहल अभी भी भरपूर थीं और फिर रात को चिराग़ों, बल्बों की रौशनी भी जवानी पर आ जाएगी। एक पल जो चिराग़ या बल्ब जलने के वक़्त का है उसे बेकार न जाने दो। मग़रिब की नमाज़ पढ़ लो। अब दुकान बढ़ा दी गयी है, दिन भर का थका–मांदा इन्सान घर आया है, हो सकता है खाना भी खा चुका हो, अब तो जम्हाईयाँ भी आ रही हैं और दिल चाहता है कि कोई काम न करें और बस सो रहें। मगर क़ानून कहता है कि अभी इशा की नमाज़ बाक़ी है। चार रकअत नमाज़ पढ़ो जिस तरह दिल चाहे, फिर आराम की नींद सो जाओ। ख़ुदा का बन्दा खड़ा होता है, चार रकअत नमाज़ पढ़ता है, उसके बाद बिस्तर पर जाता है।

ऐसा लगता है जैसे दुनिया के काम काज पर खुदा की याद इलाही के पहरे बिठा दिए गए हैं। हर बार काम शुरू करने से पहले नमाज़, काम शुरू करने के बाद नमाज़, सो के उठने के बाद नमाज़, सोने से पहले नमाज़ और जो अपने दुनिया के काम काज के साथ इन कर्त्तव्यों को ठीक ठीक निबाहता रहे वह एक कामयाब बन्दा है और उसे ख़ुदा की तरफ़ से लागू किए गए कर्त्तव्य को निबाहने में अपने जी पर कन्ट्रोल पा गया है, जिसके नतीजे में बहुत से गुनाहों के छोड़ने में वह सफ़ल हो सकता है।

ये नमाज़ का नतीजा है, और इसीलिए कहा गया है–'' बेशक नमाज़ बुराई और बेकार की बातों से बचाती है।''

(जारी...............)